**ओ३म्**

**‘देश के कर्णधार हमारे शिक्षक व शिष्य कैसे हों?’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

शिक्षा देने व विद्यार्थियों को शिक्षित करने से अध्यापक को शिक्षक व शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों को शिष्य कहा जाता है। आजकल हमारे शिक्षक बच्चों को अक्षर व संख्याओं का ज्ञान कराकर उन्हें मुख्यतः भाषा व लिपि से परिचित कराने के साथ गणना करना सिखाते हैं। आयु वृद्धि के साथ साथ बच्चा भाषा, कविता, गणित सहित विज्ञान व कला आदि विषयों को भी अपने शिक्षकों से पढ़ता है और आगे चल कर वह पुस्तकें पढ़कर व शिक्षकों के मार्गदर्शन से चिकित्सक, इंजीनियर, कम्प्यूटर सेवी, अध्यापक, व्यापारी व उद्योगपति आदि बन जाता है। हमारी वर्तमान जो शिक्षा प्रणाली है, उसमें बहुत कम लोग ही सत्य व चारित्रिक नियमों का पालन करने वाले बनते हैं। आजकल देखा जाता है कि बात बात पर झूठ बोलना एक आम बात हो गई है। यदि यह कार्य अशिक्षित करते तो समझ में आता, परन्तु बड़ी बड़ी उपाधि के धारणकर्ता व उच्च पदों पर प्रतिष्ठित लोग प्रायः असत्य बोलते हैं व अपने अपने कार्यों में मिथ्याचार व भ्रष्टाचार आदि में लिप्त पाये जाते हैं। इस असत्य व्यवहार व मिथ्याचार का कारण हमें एक ओर शिक्षा प्रणाली व दूसरी ओर शिक्षकों का निजी आचारण, जीवन व चरित्र अनुभव होता है। जैसा शिक्षक होगा वैसा ही कुछ व अधिक प्रायः शिष्य बनता है।

हमारा देश ज्ञान की दृष्टि से अन्य देशों से अधिक भाग्यशाली रहा है। प्राचीन काल में हमारे देश के लोगों के जीवन व चरित्र आदर्श व महान होते थे जिसका प्रमुख कारण वेदों का ज्ञान, विद्यार्थियों द्वारा उसका अध्ययन व आचार्यों के उच्च जीवन एवं चरित्र होते थे। आज 1 अरब से अधिक जनसंख्या हो जाने पर भी किसी के बारे में यह कहना कठिन है कि अमुक व्यक्ति सत्य का ही व्यवहार करता है एवं असत्य का किंचित व्यवहार नहीं करता और इसका चरित्र आदर्श व बेदाग है। इसका कारण हमें शिक्षा में वैदिक मूल्यों की उपेक्षा व पाश्चात्य मूल्यों की बहुलता सहित हमारे शिक्षकों का ज्ञान व अज्ञानवश पाश्चात्य मूल्यों के प्रति प्रेम अनुभव होता है। आईये, वैदिक काल में अध्यापक और अध्यापिकायें कैसे होते थे व होने चाहिये, यह वेदों के मर्मज्ञ, आदर्श जीवन व चरित्र के धनी महर्षि दयानन्द के शब्दों में जानते हैं।

महाभारतान्तर्गत उद्योगपर्व विदुरप्रजागर के अध्याय 33 के 6 श्लोकों को प्रस्तुत कर वह सत्यार्थ प्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में लिखते हैं कि जिस को आत्मज्ञान सम्यक् हो अर्थात् जो निकम्मा आलसी कभी न रहे, सुख दुःख, हानि लाभ, मान-अपमान, निन्दा स्तुति में हर्ष शोक कभी न करे, धर्म ही में नित्य निश्चित रहे, जिस के मन को उत्तम-उत्तम पदार्थ अर्थात् विषय सम्बन्धी वस्तुयें आकर्षित न कर सकें, वही पण्डित वा शिक्षक कहाता है। सदा धर्मयुक्त कर्मों का सेवन, अधर्मयुक्त कामों का त्याग, ईश्वर, वेद, सत्याचार की निन्दा न करनेहारा, ईश्वर आदि में अत्यन्त श्रद्धालु हो, वही पण्डित वा अध्यापक-अध्यापिका का कर्तव्य-अकर्तव्य अथवा कर्म है। जो कठिन विषय को भी शीघ्र जान सके, बहुत कालपर्यन्त शास्त्रों को पढ़े सुने और विचारे, जो कुछ जाने उस को परोपकार में प्रयुक्त करे, अपने स्वार्थ के लिये कोई काम न करे, बिना पूछे वा विना योग्य समय जाने दूसरे के अर्थ में सम्मति न दे, ऐसा व्यक्ति ही प्रथम प्रज्ञान पण्डित, शिक्षक, अध्यापक व अध्यापिका को होना चाहिये। अध्यापक व अध्यापिका ऐसे हों कि जो प्राप्ति के अयोग्य की इच्छा कभी न करे, नष्ट हुए पदार्थ पर शोक न करे, आपत्काल में मोह को न प्राप्त हों अर्थात् व्याकुल न हों। यह गुण बुद्धिमान पण्डित के हैं और ऐसे ही अध्यापक व अध्यापिकायें होंवे। जिसकी वाणी सब विद्याओं और प्रश्नोत्तरों के करने में अतिनिपुण व विचित्र, शास्त्रों के प्रकरणों का वक्ता, यथायोग्य तर्क और स्मृतिमान्, ग्रन्थों के यथार्थ अर्थ का शीघ्र वक्ता हो वही पण्डित वा अध्यापक कहलाता है। जिस व्यक्ति की प्रज्ञा सुने हुए सत्य अर्थ के अनुकूल और जिस का श्रवण बुद्धि के अनुसार हो, जो कभी आर्य अर्थात् श्रेष्ठ धार्मिक पुरुषों की मर्यादा का छेदन न करें, वही पण्डित वा अध्यापक आदि संज्ञा को प्राप्त होवे। प्रकरण की समाप्ति पर महर्षि दयानन्द लिखते हैं कि जहां ऐसे-ऐसे स्त्री पुरुष पढ़ाने वाले होते हैं वहां विद्या धर्म और उत्तमाचार (सत्य भाषण एवं मिथ्याचार-भ्रष्टाचार रहित व्यवहार आदि) की वृद्धि होकर प्रतिदिन आनन्द ही बढ़ता रहता है। हमारे शिक्षक और बुद्धिमान लोग स्वयं जान सकते हैं कि शिक्षक व अध्यापक-अध्यापिकाओं के इन गुणों में से कितने गुण आजकल के शिक्षकों में पाये जाते हैं? क्या शिक्षकों के महर्षि दयानन्द वर्णित यह गुण आज अप्रासंगिक हो गये हैं? ऐसा नहीं है। इसका प्रथम कारण तो हमारे शिक्षाविदों की इनसे अनभिज्ञता व दूसरा पाश्चात्य मूल्यों के प्रति गहन प्रेम है और इसके अतिरिक्त शिक्षण व्यवसाय से जो सुख सुविधायें उन्हें मिल रही है, उनका राग भी एक प्रमुख कारण है। हम महर्षि दयानन्द के प्रति इन वैदिक, सनातन व भारतीय मूल्यों को महाभारत से निकाल कर हिन्दी में अर्थ सहित जनसाधारण में प्रस्तुत करने के लिए सभी देशवासियों पर उनका उपकार मानते हैं। महर्षि द्वारा प्रस्तुत विचारों पर ध्यान देने पर हमें उनके गुरू प्रज्ञाचक्षु स्वामी विरजानन्द सरस्वती और स्वयं स्वामी दयानन्द ही सच्चे अध्यापक, शिक्षक, गुरु व आचार्य और इन सभी गुणों से सम्पन्न दिखाई देते हैं।

अध्यापकों के गुणों का वर्णन करने के बाद वह पढ़ाने में अयोग्य मूर्ख शिक्षकों का वर्णन भी करते हैं जिसका आधार भी उन्होंने महाभारत के उद्योगपर्व के अध्याय 33 के दो श्लोकों संख्या 30 व 36 को बनाया है। वह लिखते हैं कि जिसने कोई शास्त्र न पढ़ा न सुना, अतीव घमण्डी, दरिद्र होकर बड़े-बड़े मनोरथ करनेहारा, विना कर्म से परार्थों की प्राप्ति की इच्छा करने वाला हो, उसी को बुद्धिमान लोग मूढ़ कहते है। ऐसे लोग पढ़ाने योग्य नहीं होते। आजकल समाज में ऐसे बहुत से अध्यापक हमें देखने को मिल जाते हैं। दूसरे श्लोक का अर्थ करते हुए वह लिखते हैं कि जो विना बुलाये सभा वा किसी के घर में प्रविष्ट हो, उच्च आसन पर बैठना चाहे, विना पूछे सभा में बहुत सा बोले, विश्वास के अयोग्य वस्तु वा मनुष्य में विश्वास करे, वही मूढ़ और सब मुनष्यों में नीच मनुष्य कहाता है। इन 2 श्लोकों के अर्थों पर टिप्पणी कर दयानन्द जी कहते हैं कि जहां ऐसे पुरुष अध्यापक, उपदेशक, गुरु और माननीय होते हैं वहां अविद्या, अधर्म, असभ्यता, कलह, विरोध और फूट बढ़ कर दुःख ही बढ़ता जाता है। शिक्षक दिवस अभी 3 दिन पूर्व ही व्यतीत हुआ है। हम समझते हैं कि प्रत्येक शिक्षक दिवस पर शिक्षक के इन गुणों व अवगुणों पर विचार कर अवगुणों के त्याग व गुणों के ग्रहण की सभी शिक्षकों को प्रतिज्ञा लेनी चाहिये।

विद्यार्थियों के लक्षण भी महर्षि दयानन्द ने महाभारत के आधार पर लिखे हैं। वह हैं कि शरीर और बुद्धि में जड़़ता, नशा, मोह, किसी वस्तु में फंसावट, चपलता और इधर-उधर की व्यर्थ कथा करना सुनना, पढ़ते पढ़ाते रुक जाना, अभिमानी, अत्यागी होना ये सात दोष विद्यार्थियों में होते हैं। जो ऐसे दोषों से युक्त विद्यार्थी होते हैं, उनको विद्या कभी नहीं आती। सुख भोगने की इच्छा करने वाले को विद्या कहां? और विद्या पढ़ने वाले को सुख कहां? क्योंकि विषय-सुखार्थी विद्या को और विद्यार्थी विषयसुख को छोड़ दें। ऐसा किये विना विद्या कभी नहीं आ सकती। कैसे विद्यार्थियों को विद्या आती है, इसका उत्तर है कि जो सदा सत्याचार में प्रवृत्त, जितेन्द्रिय और जिन का ब्रह्मचर्य सच्चा व अखण्डित हो, वे ही विद्वान होते हैं। इसलिये शुभ लक्षणयुक्त अध्यापक और विद्यार्थियों को होना चाहिये। महर्षि दयानन्द अपने विचार व मान्यतायें बताते हुए लिखते हैं कि अध्यापक लोग ऐसा यत्न किया करें कि जिससे विद्यार्थी लोग सत्यवादी, सत्यमानी, सत्यकारी सभ्यता, जितेन्द्रिय, सुशीलतादि शुभगुणयुक्त शरीर और आत्मा का पूर्ण बल बढ़ा के समग्र वेदादि शास्त्रों में विद्वान् हों। सदा उन की कुचेष्टा छुड़ाने में और विद्या पढ़ाने में चेष्टा किया करें और विद्यार्थी लोग सदा जितेन्द्रिय, शान्त, पढ़ानेहारों में प्रेम, विचारशील, परिश्रमी होकर ऐसा पुरुषार्थ करें जिससे पूर्ण विद्या, पूर्ण आयु, परिपूर्ण धर्म और पुरुषार्थ करना आ जाय। यह कार्य व इनको करके अध्यापक ब्राह्मण वर्ण के कहलाते है।

हम समझते हैं कि महर्षि दयानन्द के उपर्युक्त विचारों व मान्यताओं में आदर्श गुंरु व शिष्य का चित्र उपस्थित हुआ है। हमारे शिक्षाविदों को इस पर विचार कर इसका शिक्षा प्रणाली में समावेश करना चाहिये। कम आयु के बच्चों में सदाचार व सदग्रन्थों वेद, दर्शन, उपनिषद, मनुस्मृति एवं सत्यार्थप्रकाश आदि की शिक्षा आवश्यक है। इनको पूर्ण वा आंशिक ही पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जाना चाहिये तभी हमें अच्छे शिक्षक व शिष्य प्राप्त होंगे। समूचे देश में संस्कृत अनिवार्य विषय के रूप से पढ़ाई जाये, इससे शिक्षा की बहुत सेवा होगी। इसी के साथ लेख को विराम देते हैं।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**